

बाल साहित्य मंडल



आर्यभट्ट

आर्यभट्ट

सदसत्ज्ञानसमुद्रात्
समुद्धृतम् देवताप्रसादेन ।
सत्ज्ञानोत्तमरत्नम्
मया निमग्नम् स्वमतिनावा ॥

(आर्यभट्ट गोलपाद : 49)

“ज्योतिष शास्त्र में सत् ज्ञानरूपी उत्तम रत्न, सत्य और असत्य के मिश्रणरूपी समुद्र में डूब गया था। मैंने बुद्धिरूपी जहाज पर चढ़कर देवतानुग्रह से उसे उस समुद्र में से निकाला है।”

यह आर्यभट्ट की अपनी कृति के प्रति कही गयी बात है। इस कृति ने उसे अपार ख्याति प्रदान की। भारतीय गणित और खगोल विज्ञान में प्रतिभासंपन्न किसी एक के नाम से अब तक के प्रकाशित ग्रंथों में से उपलब्ध महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथ ‘आर्यभटीयम्’ ही है। इससे ही इसका महत्व सिद्ध होता है। ईसा की सोलहवीं शताब्दी तक इसी कृति को गुरुकुलों में पाठ्यग्रन्थ के रूप में भारतीय विद्यार्थी पढ़ा करते थे। उसकी इस कृति ने भारतीय खगोल विज्ञान में एक नये पंथ का निर्माण किया। उस पंथ के अनुयायी स्वयं को आर्यभट्ट के शिष्य कहलाने में गर्व अनुभव करते हैं। उनके शिष्य उन्हें ‘भगवान’, ‘प्रभु’ इत्यादि नामों से संबोधित करते थे। प्रथम भास्कर ने (सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध) कहा है-“खगोल ग्रहों की गतियों के बारे में आर्यभट्ट के अलावा किसी को ज्ञान नहीं था।”

आर्यभट्ट ही भारत का प्रथम खगोलशास्त्री या गणितज्ञ नहीं था। उससे पहले भी यह शास्त्र था। शास्त्र के अनेक जानकार एवं मेधावी विद्वान थे। पंचांग के नियम, नक्षत्र विभाजन ईसा पूर्व 14 अथवा 13 वीं शताब्दी में ही भारत में प्रचलित थे। वेदों में भी इस विज्ञान के बारे में कुछ विवरण मिलते हैं। पंचांगों का निर्माण करना, वैदिक क्रियाओं के लिए आवश्यक तिथियों व मुहूर्तों का निर्धारित करना, ग्रहण, अमावस्या को पहले ही जानना खगोल शास्त्र (विज्ञान) का मुख्य प्रयोजन है। उसके बाद 'सिद्धान्त' नाम के खगोलशास्त्र के ग्रंथों की रचना हुई।

खगोल विज्ञान के प्रवर्तक

आर्यभट्ट के समय में भारतीय खगोलशास्त्र की बड़ी दयनीय स्थिति थी। उस समय प्रचलित पैतामह सिद्धान्त, सौर सिद्धान्त, वासिष्ठ, सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त और पौलिष सिद्धान्त ये पाँचों सिद्धान्त पुराने हो चुके थे। गणित के ठोस परिणाम उनसे प्राप्त नहीं होते थे। इसलिए वे अधिक उपयोगी नहीं रहे थे। ग्रहों की स्थिति, ग्रहण का समय आदि गणित के आधार पर जो प्राप्त होता था, उसमें और प्रत्यक्ष स्थिति में भारी अंतर होता था।

परिणामस्वरूप लोगों का ज्योतिष से विश्वास उठने लगा। इस विज्ञान की त्रुटियों को दूर कर, उसे नवीन और प्रभावी रूप में आर्यभट्ट ने प्रस्तुत किया।

आर्यभट्ट के पूर्व भी, कुछ विद्वानों ने इस दिशा में प्रयत्न किये थे परंतु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी थी।

छठी शताब्दी में एक खगोलशास्त्री के रूप में आर्यभट्ट ने मान्यता प्राप्त कर ली थी—एक ऐसे शास्त्री जिन पर पूर्ण विश्वास किया जा सके।

इस प्रकार उन्होंने खगोलशास्त्र को भी अपने प्रयासों से पुनः प्रतिष्ठित किया। लोग उन्हें भारत के खगोलशास्त्र के प्रवर्तक के रूप में जानने लगे।

कुसुमपुर

आर्यभट्ट मूलतः कहाँ के थे, इस प्रश्न का उत्तर वे स्वयं ही अपनी कृति में देते हैं—

ब्रह्मम् कु शशि बुध भृगु रवि ।
कुज गुरु कोण भगणान्मस्कृत्य ।
आर्यभट्टस्त्विह निगदति ।
कुसुमपुरेऽभ्यर्चितम् ज्ञानम् ॥

“ब्रह्म, भूमि, चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, गुरु, शनि और नक्षत्रसमूहों को उनके अधिदेवताओं के साथ नमस्कार कर कुसुमपुर में जनता की मान्यताप्राप्त आर्यभट्ट ग्रहगति-ज्ञान को समझने के साधन-तंत्र को यहाँ प्रस्तुत कर रहा है।”

फारस के विद्वान अलबरूनी (सन् 973) ने भी कई बार ‘कुसुमपुर के आर्यभट्ट’ – इन शब्दों में ही अपने लेखों में उनका उल्लेख किया है।

कुसुमपुर का अर्थ है पुष्पों या फूलों का नगर। बाद में वह पाटलीपुत्र कहलाया। इस नाम परिवर्तन की एक रोचक कथा है। चीनी यात्री ह्युएनत्संग पाटलीपुत्र में कुछ दिन रहा था। उसके अनुसार एक बार कुछ विद्यार्थी नगर के बाहर घूमते हुए निकल गये। एक बड़े पाटल वृक्ष की छाया में वे बैठे थे कि उनमें से एक अचानक अत्यंत व्याकुल हो उठा। सभी मित्र ही थे। अपने साथी की व्याकुलता को देख उन्होंने समझा इसे प्रेम-पीड़ा हो गयी है। इसकी औषधि तो विवाह ही हो सकती है।

उन मित्रों ने पाटल वृक्ष के पुष्पों से शोभित एक डाली तोड़ी और उसे वधू बनाया। दो मित्रों ने उसके माता-पिता का अभिनय किया और वह डाली-वधू के रूप में उस पीड़ित विद्यार्थी को दे दी। “यह लो तुम्हारी प्रियतमा, इसको स्वीकार करो।” कहकर विवाह करा दिया। उस विद्यार्थी ने सहर्ष उस डाली को स्वीकार करके अपनी कृतज्ञता प्रकट की। जब वे शाम को घर लौटने के लिए निकले तो इस ‘विद्यार्थी वर’ ने उनके साथ जाने से इन्कार किया। उसके हाथ में पाटल वृक्ष की डाली अभी भी वैसे ही थी। उसने कहा- रात को यही ठहरूँगा। जहाँ पेड़ था उस ओर रात को महल दिखायी दिया। चारों ओर चकाचौंध करने वाली कांति फैल गयी। मधुर संगीत गूँजने लगा। उस भवन से वृद्ध दम्पति एक बालिका को लेकर जुलूस में उसकी ओर आये। वृद्ध ने कहा-“यह लो तुम्हारी वधू। इसे स्वीकार करो।” विवाह धूमधाम से हुआ। एक वर्ष बीत गया। वे सभी उस अभिमंत्रित वातावरण में ही थे। नूतन दम्पति को पुत्र भी हुआ। जब विद्यार्थी वर ने यह आशा व्यक्त की कि अपने पुत्र को नगर ले जाये, तब वृद्ध ने “उधर क्यों जाते हो? तुम्हारे लिए यहीं एक नगर निर्माण करता हूँ” यह कहते हुए एक विशाल नगर का निर्माण किया। उसको पाटलीपुत्र-पुर अर्थात् ‘पाटली वृक्ष के पुत्र का नगर’ नाम दिया गया। यही धीरे-धीरे ‘पाटलीपुत्र’ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। चीनी यात्री ने इस नगर को ‘पो-तो-लित्सें’ कहा (त्से माने पुत्र)।

मगध राज्य में

‘आर्यभट्टीयम्’ के प्राचीन टीकाकारों में से एक प्रथम भास्कर (सन् 629) आर्यभट्ट को अश्माणाचार्य और उसके शास्त्र को अश्माकतन्त्र बताता है। खगोल विज्ञान को अश्माक गणित कहा गया। अश्माक जनपदवालों

को इस शास्त्र का ज्ञान काफी था। ऐसी जानकारी भी उसने दी है।

कई पुराणों में अश्माक जनपद का उल्लेख है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि यह जनपद विंध्य पर्वत के दक्षिण में बहने वाली नर्मदा नदी तथा गोदावरी नदी के बीच का प्रदेश था। आर्यभट्ट के माता-पिता इसी अश्माक जनपद के थे। हो सकता है, आर्यभट्ट का जन्म भी यहीं हुआ हो।

कुसुमपुर, बाद में पाटलीपुत्र-पटना कहलाया, मगध (बिहार) की राजधानी का नगर बना। आर्यभट्ट ने इसी नगर में अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'आर्यभटीयम्' की रचना की।

मगध उन दिनों विद्या का एक प्रसिद्ध केंद्र था। विश्व-विख्यात नालन्दा विश्वविद्यालय इसी राज्य में था। इस विश्वविद्यालय में खगोलशास्त्र के अध्ययन के लिए एक विशेष विभाग भी था। एक प्राचीन श्लोक आर्यभट्ट के जन्म की प्रशंसा में कहता है—

“कलियुग में कुसुमपुर में स्वयं सूर्य ही जोतिष्यशास्त्र में निपुण कुलप आर्यभट्ट के रूप में जन्मा था।” इसमें कुलप शब्द से ध्वनित होता है कि आर्यभट्ट नालन्दा विश्वविद्यालय का कुलपति भी था। नालन्दा विश्वविद्यालय पाँचवी-छठी शताब्दी में काफी उन्नतावस्था में था। आर्यभट्ट का भी यही काल था।

इस ग्रंथ का प्रचार दक्षिण भारत में विशेष रूप से हुआ। सोलहवीं-सत्रहवीं सदी तक दक्षिण में इसका अध्ययन, अध्यापन जारी था। इसी के आधार पर बने पंचांग आज भी दक्षिण में वैष्णव पंथ में मान्य हैं।

आर्यसिद्धान्त दक्षिण में ही अधिक प्रचलित होने से आर्यभट्ट दक्षिण के ही होंगे, यह तर्क कुछ विद्वानों ने किया। और अब तो यह भी कहा जा

रहा है कि आर्यभट्ट मूलतः केरल के ही थे। पृथ्वी अपने ही इर्दगिर्द घूमती है, याने उसे दैनंदिन गति है, यह मानने वाला ज्योतिषी भारत में सर्वप्रथम आर्यभट्ट ही था।

काल

उसके काल के बारे में उसी के द्वारा स्पष्ट निर्देश देने वाला यह श्लोक देखिए—

षष्ट्यब्दानाम् षष्टिर्यदा, व्यतीताश्रयश्च युगपादाः।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह, मम नन्मना व्यतीताः॥

“अब के अट्ठाईसवें महायुग में तीन पादों के बीत जाने पर कलियुग में साठ वर्षों का चक्र साठ आवर्तों को पूरा करने के पश्चात् (अर्थात् 3600 वर्ष) मेरा जन्म होकर तेईस वर्ष बीत चुके हैं।” इस दृष्टि से कलियुग के 3600 तक आर्यभट्ट 23 वर्ष की आयु का था। कलि 3600 माने सन् 476। इसलिए आर्यभट्ट सन् 476 में जन्मा था। और भी निश्चित गणित करने वाले विद्वानों ने इसे इस रूप में रखा—कलियुग के 3600 वर्ष पूर्ण होकर, लंका अथवा उज्जैन के पास मध्याह्न सूर्य मेष राशि में प्रवेश करने पर (मध्यम मेष संक्रांति)—अर्थात् यह तिथि रविवार 21 मार्च सन् 499 थी। अतः आर्यभट्ट का जन्म मेष संक्रांति 21 मार्च को हुआ था।

तपस्वी

आर्यभट्ट के समय में बौद्धधर्म का काफी प्रभुत्व था। जैनधर्म भी प्रचलित था। फिर भी आर्यभट्ट निश्चय ही इन दोनों से सम्बन्धित नहीं थे। प्राचीन कृतियों में रचनाकार प्रारंभ में अपने इष्टदेवता की प्रार्थना करता है। उसी प्रार्थना में उसके अपने मत को भी व्यक्त करता है। ‘आर्यभट्टीयम्’

के प्रारंभिक श्लोक को देखिये—

प्रणिपत्यैकमनेकम् सत्यम्
देवताम् परम ब्रह्म ।
आर्यभट्ट स्त्रीणि गदति गणितम्
कालक्रियाम् गोलम् ॥

“इस संसार की सृष्टि के लिए मुख्य कारणीभूत जो एकमात्र है उसे और नाना भाँति की सृष्टि के लिए कारणीभूत होने के कारण जो भी है उस सत्यरूपी परब्रह्म देवता की वन्दना करते हुए आर्यभट्ट गणित, कालक्रिया और गोल नामक तीन विषयों को बतायेगा।”

कृति के अन्त में भी स्वयंभू ब्रह्म की स्तुति आयी है। इससे स्पष्ट होता है कि आर्यभट्ट ब्रह्म सिद्धान्त से जुड़े हुए थे। ब्रह्म के वरदान से ही यह जानकारी उन्होंने प्राप्त की। फिर अन्य लोगों के सोचने में क्या गलती है? प्रथम भास्कर ने कहा है— “आर्यभट्ट ने बहुत ही कठोर तपश्चर्या की। ब्रह्म के साक्षात्कार से ही ग्रहों की सही गति का दर्शन आर्यभट्ट ने पाया। इसी कारण से ज्ञानी लोग कहते हैं कि पुरुष श्रेष्ठ, नरोत्तम व्यास महर्षि ने जिस प्रकार अपने तपोबल से इंद्रियों को अगोचर और बुद्धि की परिधि में न आने वाले (बुद्धि से बाहर के) विषयों को समझ लिया था, वैसे ही आर्यभट्ट ने उसी मार्ग को अपनाकर सर्व-जगत्-कल्याण की साधना की।

आर्यभट्ट द्वारा ब्रह्म सिद्धान्त अत्यंत प्राचीन है। दूसरा, आर्यभट्ट के निवास स्थान कुसुमपुर के विद्वान लोग ब्रह्म सिद्धान्त के शरणागत हो गये थे। वे उसी सिद्धान्त की श्रेष्ठता मानते थे।

रचनाकार से रचना की प्रधानता

इससे भी अधिक जानकारी आर्यभट्ट की रचना से मिलती है। उसके

माता-पिता कौन थे? विद्याभ्यास कहाँ हुआ, गुरु कौन थे? इत्यादि का पता नहीं मिलता। प्रथम भास्कर अपने लेख में कुछ विवरण देता है। आर्यभट्ट विद्या गुरु की वृत्ति का निर्वाह करते थे। पांडुरंग स्वामी, लाटदेव और निश्शान्त उनके शिष्यों में प्रमुख थे। उनमें लाटदेव महापंडित खगोलज्ञ के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उसे भास्कर ने आचार्य सर्व-सद्भिन्त-गुरु के रूप में सम्बोधित किया है। वराहमिहिर के कथानुसार इस लाटदेव ने दो कृतियों की रचना की थी।

हमारे देश में प्राचीन काल में रचना करने वाले को महत्व नहीं दिया जाता था। कृति को ही महत्व दिया जाता था। इसलिए यदि यह कहा जाये कि आर्यभट्ट ने अपने बारे में कुछ नहीं कहा तो आश्चर्य नहीं। किसने कार्य किया यह मुख्य विषय नहीं। कार्य मुख्य है, उसका अर्थ ग्रहण किया जाए, इस दृष्टि से आर्यभट्ट ने अपने बारे में अधिक नहीं कहा। अतः उसे जानने का मतलब होगा, उसकी कृति की खोज करके उसका अर्थ समझने का प्रयत्न करना। 'आर्यभट्टीयम्' के बारे में स्थूल विवरण से आर्यभट्ट की साधना को कुछ हद तक समझ सकेंगे।

आर्यभट्टीयम्

'आर्यभट्टीयम्' - यह गणित तथा खगोल शास्त्र के सूत्रों को संक्षेप में सूत्ररूप में बताने वाली कृति है। भाषा काफी गंभीर तथा शुद्ध वैज्ञानिक है। आर्यभट्ट ने बहुत ही संक्षेप में सीधे विषयों को निरूपित किया है। इस कृति में कोई भी असंगत, असम्बद्ध बात नहीं दिखायी देती। भाषा में भी तांत्रिक पदों का ही बोलबाला है। बिना विवरण के श्लोकों का अर्थ जानना कठिन है।

'आर्यभट्टीयम्' में कुल 121 श्लोक हैं। कृति को विषयानुसार-

गीतिकापाद, गणितापाद, कालक्रियापाद और गोलापाद नामक 4 भागों में बाँटा गया है। कृति में प्रयुक्त छन्दों के अनुरूप इसे 2 भागों में बाँटा गया है - गीतिका छन्दों में 'दशगीतिका' और आर्या में 'आर्य-अष्ट-शत।'

'दशगीतिका' में 13 श्लोक हैं। प्रथम श्लोक में मंगलाचरण है। तो द्वितीय श्लोक में सूत्रों में प्रयुक्त परिभाषाएँ दी गयी हैं। अन्त में (तेरहवीं) दशगीतिका सूत्र की फलश्रुति है। इन तीनों श्लोकों की गणना न होने के कारण ही इसे 'दशगीतिका सूत्र' कहा गया है। इसमें युगों का प्रमाण, ग्रह आदि का परिभ्रमण काल (अर्थात् ग्रहों की गति का काल) राशि आदि के भेद, आकाश कक्षीय (पथ) प्रमाण, ग्रहों के विषुवसम्पात इत्यादि को सूत्रबद्ध किया गया है।

शेष 108 श्लोकों के भागों को ही 'आर्यभट्टीयम्' कहते हैं। इसके 3 पाद हैं। 33 श्लोक 'गणितपाद' ग्रहगति से काल-निर्धारण की जानकारी देने वाले, 25 श्लोक 'काल्यक्रियापाद' और अंतिम 50 श्लोकों का 'गोलपाद' है।

गणितपाद

'गणितपाद' में गणित के वर्गमूल, घनमूल, त्रिकोणादि क्षेत्रफल ज्या अन्तर, प्रकाश छाया से सम्बंधित गणित, त्रैराशिक व्यवहार, कुक्कुट नामक अनिर्दिष्ट समीकरण इत्यादि हैं। इसी विभाग में वृत्त के व्यास और उसकी परिधि का आसन्न (अति निकट स्थिति) प्रमाण [इसे आधुनिक काल में पाय (π) का संकेत देते हैं] का विवरण दिया गया है। ज्या पदक (सैन् टेबल) इत्यादि मुख्य विषय मिले हैं। यहाँ पर सभी सूत्ररूप में सिद्ध किये गये सिद्धान्त हैं। अतः इस निर्णय तक पहुँचने के लिए गहन श्रम से अध्ययन करके अनेक समस्याओं को आर्यभट्ट ने हल किया होगा।

कालक्रियापाद

दूसरा विभाग ही कालक्रियापाद है। इसमें काल के विभिन्न भाग, ग्रहों का परिभ्रमण, मास-संवत्सर, अधिक मास, क्षयतिथियाँ, ग्रंथ रचना का काल ग्रहों की गतियाँ, वार (सप्ताह) की कल्पना इत्यादि का विवरण है।

गोलपाद

गोलपाद में खगोल विज्ञान का विचार है। सूर्य-चन्द्र-राहु-केतू आदि ग्रहों की दृश्यादृश्य परिस्थिति, भूमि की आकृति, दिन-रात के कारण, देशान्तरों में सूर्योदय, राशियों का उदय, ग्रहणों इत्यादि का विवरण 50 श्लोकों में है।

अब हम 'आर्यभटीयम्' में वर्णित कुछ मुख्य बातों का परिचय प्राप्त करेंगे।

(1) 'पाय'

वृत्त के व्यास तथा उसकी परिधि (घेरे) के प्रमाण को आजकल 'पाय' कहा जाता है। इसका मूल्य ($\sqrt{10}$) (दस का वर्गमूल) ऐसा अन्दाज लगाया गया है। एक संख्या को उसी से ही गुणा करने पर आने वाला गुणनफल प्रथम संख्या का वर्गमूल बनती है। जैसे $2 \times 2 = 4$, अतः 2 ही 4 का वर्गमूल है। लेकिन ($\sqrt{10}$) का सही मूल्य बताना यद्यपि साध्य नहीं फिर भी गणित की दृष्टि से अति निकट का मूल्य जान लेना जरूरी था। इसे आर्यभट्ट यों कहता है:-

चतुरधिकम् शतमष्टगुणम्
द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम्।

अयुतद्वय निष्कम्भस्यासन्नो

वृत्त परिणाहः ॥

“एक वृत्त का व्यास (निष्कम्भ) 20,000 हो तो उसकी परिधि (घेरा) 60,832 होगी।’ इससे इस $\pi = 62,832 \div 20000 = 3.1416$ । इस मूल्य को आसन्न (अति निकट वाला) बताना ही आर्यभट्ट के निष्कर्ष ज्ञान का साक्षी है। इसी मूल्य को आज भी गणित शास्त्र में प्रयुक्त किया जाता है।

अकबर के दरबार के मंत्री अबुलफजल ने अपने समय की घटनाओं को ‘आईने अकबरी’ में लिखा है। उसमें लिखा है कि यूनानियों को हिन्दुओं द्वारा पता लगाये गये वृत्त के व्यास तथा उसकी परिधि के मध्य सम्बन्ध के रहस्य की जानकारी नहीं थी। इस बारे में ठोस परिज्ञान प्राप्त करने वाले हिन्दू ही थे। आर्यभट्ट को ही ‘पाय’ का मूल्य बताने वाला प्रथम व्यक्ति बताया गया है।

(2) पृथ्वी स्थिर नहीं है।

पृथ्वी ग्रह, चन्द्र इनमें स्वयं का प्रकाश नहीं है। सूर्य की कांति से सूर्याभिमुखी गोलार्ध अपने ऊपरी क्षेत्रफल के अनुपात में सूर्य किरणों से उज्ज्वल दिखायी देते हैं। जहाँ हम वास करते हैं, वह भूमि एक गोल है। अन्य खगोलों में मध्य भूमि भी आयस्कांतों से आवृत्त लोहे की गेंद जैसी है। जिस प्रकार कदम्ब वृक्ष का पुष्पगुच्छ ऊपर-नीचे, आजू बाजू भरा हुआ होता है, वैसे ही यह गोलाकार भूमि पानी में रहने वाले और जमीन पर रहने वाले विभिन्न प्रकार के प्राणियों से भरी है।

भूमि अपने अक्ष पर घूमती है। इसे आर्यभट्ट इस प्रकार दर्शाता है—

अनुलोमगतिनौस्थः पश्यत्यचलम्

विमोलगम् यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् सम
पश्चिमगानि लंकायाम् ॥

“नाव में यात्रा करने वाला जिस प्रकार किनारे पर स्थिर रहने वाले चट्टान, पेड़ इत्यादि को विरुद्ध दिशा में भागते जैसे देखता है; वैसे ही अचल नक्षत्र, निरक्षक-प्रदेश लंका में सीधे पूर्व से पश्चिम की ओर सरकते हुए देखा जा सकता है।” (लंका नामक कोई गाँव नहीं है। भूमि के विषुववृत्त पर उज्जैन की मध्याह्न रेखा पर एक बिन्दु की कल्पना करके उसे खगोलज्ञ लंका कहते हैं।)

उस काल में मान्यता थी कि भूमि ही सब के लिए केन्द्र है और वह स्थिर है। आर्यभट्ट ही इस कल्पना को गलत बताने वाला प्रथम व्यक्ति था।

(3) सूर्योदय-सूर्यास्त

भूमि गोलाकार रहने के कारण और विविध नगरों को रेखांतर होने के कारण ही अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग कालों में सूर्योदय-सूर्यास्त होते हैं। इसे आर्यभट्ट ने ज्ञात कर लिया था जिसे उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया-

उदयो यो लंकायाम् सोस्तमयः
सवितुरेव सिद्धपुरे ।
मध्याह्ने यवकोट्याम् रोमक
विषयेऽर्धरात्रः स्यात् ॥

जब लंका में सूर्योदय होता है तब सिद्धपुर में सूर्यास्त हो जाता है। तब यवकोटि में मध्याह्न और रोमक प्रदेश में अर्धरात्रि होती है।

यहाँ के लंका, रोमक, सिद्धपुरी समभाजक वृत्त के ऊपरी भाग हैं। लंका का रेखांश 0° हो तो यवकोटि का पूर्व को 90° रोमक का पश्चिम को 90° सिद्धपुरी का 180° (लेकिन ऐसे कोई गाँव आजकल समभाजक वृत्त के ऊपर दिखायी नहीं देते। अतः कुछ लोग इन्हें काल्पनिक नाम मानते हैं।)

ग्रहों के सही स्थान को बताने के लिए आर्यभट्ट का बताया गया विधान अन्य ज्योतिष शास्त्रों से भिन्न है। यह आर्यभट्ट की प्रमुख उपलब्धियों में से एक है।

(5) काल-विभाजन

आर्यभट्ट के अनुसार काल-विभाजन बहुत ही सरल तथा वैज्ञानिक है। मनुस्मृति, सूर्यसिद्धान्त इत्यादि में काल-विभाजन इस प्रकार है—

1 कल्प : 14 मन्वन्तर + 6 महायुग = 1,000 युग।

1 मन्वन्तर = 71 महायुग

1 महायुग = 43,20,000 वर्ष।

और एक महायुग में चार युग—कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलि। (कृत युग में 17,28,000 वर्ष, त्रेतायुग में 12,96,000 वर्ष, द्वापर युग में 8,64,000 वर्ष और कलियुग में 4,32,000 वर्ष)

आर्यभट्ट ने इस प्रकार विभाजन कर इसे सरल किया है—

1 कल्प = 14 मन्वन्तर अथवा 1,008 महायुग

1 मन्वन्तर = 72 महायुग

1 महायुग = 43,20,000 वर्ष

महायुगों को चार युगों में विभाजित करके उन्हें समान बताया गया है। प्रतियुग में भी 10,80,000 वर्ष होते हैं।

छाया (परछाई) को नापना

आर्यभट्ट द्वारा प्रकाश के सम्मुख रहने वाली वस्तु की छाया को नापने के लिए दिये गये सूत्र बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। शून्य में सूर्य के प्रकाश से ग्रह-उपग्रह प्रकाशित होते हैं। सूर्य का प्रकाश गोलरूप के एक मुख को मात्र प्रकाशित करता है। उसके कारण उसका दूसरा मुख, उसकी छाया (परछाई) में रहता है। इसके अतिरिक्त गोल की छाया शून्य में दिखायी देती है। इसकी कल्पना के लिए एक गेंद को दीपक के प्रकाश में देखना चाहिये। उसकी छाया चपटी-सी दिखायी देती है। उसकी भी नियमित लम्बाई होती है। इस छाया की लम्बाई दीपक और गेंद की दूरी पर और गेंद के गात्र पर निर्भर करती है। एक खगोल काय दूसरे की छाया में आने पर उसे ग्रहण करते हैं। उसे पार्श्व अथवा पूर्ण करने के लिए वह छाया के किस भाग में कितनी मात्रा में प्रवेश करता है उस पर निर्भर करता है। छाया की पट्टिका में न आते हुए दूर रहकर एक ही लकीर में आने पर उसके दर्शनीय भाग को अन्य खगोल काय द्वारा भी बन्द होना साध्य है। तब ऊपरी तौर से दिखायी देने वाले उसके व्यास पर ग्रहण विधान निर्धारित करना पड़ता है। हमारे चिर-परिचित चंद्र-सूर्य ग्रहण होने के तरीके यही हैं। चंद्र, पृथ्वी की छाया में डूबता है। लेकिन सूर्य ग्रहण में मात्र सूर्य के बिम्बों को चंद्र ढकता है। आर्यभट्ट के इस गणित से ग्रहों को दर्शाने वाले व्यास को छाया की लम्बाई को नापना साध्य हुआ। इसी कारण भारतीय ज्योतिष्य पद्धति से हिसाब करके निर्णित ग्रहणों के काल आज तक गलत नहीं हुए हैं। इससे आर्यभट्ट की महत्वपूर्ण देन की कल्पना की जा सकती है।

श्रेढी के योग का पता लगाने वाली पद्धति को आर्यभट्ट ने बताया है। श्रेढी का अर्थ है-एक नियम में बन्धी हुई संख्याओं का समूह। उस प्रकार की एक श्रेढी $1 + 2 + 3 + 4 + 5$ इसके योग (जोड़) का पता लगाने

वाला सूत्र गणितपाद के 19वें श्लोक में दिया गया है। उसके बाद के सूत्र ऐसी दो श्रेढीयों के योग का पता लगाने में सहायक हैं।

बीज गणित

बीज गणित को प्रारंभ करके प्रयुक्त करने वाला भारतीय गणित शास्त्रज्ञ आर्यभट्ट ही था। उससे पहले बीज गणित का प्रचलन दिखायी नहीं देता।

त्रैराशिक

यद्यपि त्रैराशिक आर्यभट्ट से पहले भी रूढ़ था, फिर भी उसे प्रकट करने की ख्याति आर्यभट्ट को ही मिलती है। गणित में उसे अत्युत्तम नियम कहा जाता है। इस गणित में तीन अंशों (दत्तक) को देना अनिवार्य होने के कारण इसे त्रैराशिक कहा जाता है। प्रमाण (प्र) फल (फ) और इच्छा (इ) ज्ञात हो तो गणित यों होता है। 'प्र' से 'फ' फल हो तो 'इ' से प्राप्त इच्छा फल कितना होगा। इच्छा फल 'क्ष' मान लिया जाय, आर्यभट्ट ने यह सूत्र दिया है।

त्रैराशिक फलराशिकम् तमथेच्छराशिना हतम् कृत्वा।

लब्धम् प्रमाणभजितम् तस्मादिच्छा फलमिदम् स्यात् ॥

“फलराशि को इच्छराशि से गुणा करके आये हुए को (लब्ध) प्रमाणराशि से भाग देने पर इच्छाफल प्राप्त होता है।”

अर्थात्

$$\text{इच्छाफल (क्ष)} = \frac{\text{फल राशि} \times \text{इच्छा राशि}}{\text{प्रमाण राशि}}$$

अनिर्दिष्ट समीकरणों को प्राप्त करने के लिए 'कुक्कट' नामक सूत्रों को दिया जाना आर्यभट्ट की प्रवीणता का सूचक है। इस विभाग को ब्रह्मगुप्त, महावीर, भास्कर इत्यादि आगे आने वाले शास्त्रियों ने विशेष रूप से बढ़ाया है।

परिभाषा

यह पहले ही कहा जा चुका है कि 'आर्यभट्टीयम्' श्लोकरूप में होने वाला सूत्र-ग्रंथ है। सूत्रों का सदा स्मरण रखने लायक तथा संक्षिप्त रूप में व्यापक अर्थ देने वाले गणित हैं। खगोल शास्त्र में इस प्रकार के सूत्रों का निर्माण करना सरल कार्य नहीं है। संख्याओं को निर्देशित करने के लिए इस शास्त्रकृति में आर्यभट्ट ने अपनी ही एक परिभाषा निर्मित की है। अक्षरों का स्वर, व्यंजन में वर्गीकरण किया जाता है। वैसे ही कुछ ह्रस्वाक्षर (उच्चारण में कम समय लेने वाले) कुछ दीर्घाक्षर (उच्चारण में अधिक समय लेने वाले) उदाहरणार्थ, अ, इ, ह्रस्वाक्षर; आ, ई, ऊ दीर्घाक्षर हैं, इन अक्षरों को आर्यभट्ट ने संकेत रूप में प्रयुक्त किया है। इनका उपयोग करके बड़ी संख्याओं को सूचित करने के लिए साध्य किया। उदाहरणार्थ-एक महायुग में 43,20,000 वर्ष होते हैं। इसे 'युगरविभगणाः ख्युद्ध' नाम में सूत्रबद्ध किया। आर्यभट्ट द्वारा सिद्ध किये गये संकेतों के अनुसार $ख्यु = 3,20,000$, $फ = 4 ऋ = 10,00,000$ । $ख्युध्य$ माने $3,20,000 + (4 \times 10,00,000) = 43,20,000$ । इस प्रकार, 5,77,53,336 (पाँच करोड़ सतहत्तर लाख तिरपन हजार तीन सौ छत्तीस), आठ अक्षरों में कह देता है। इतनी बड़ी-बड़ी संख्याओं को कुछ अक्षरों में कहना साध्य हो जाए तो स्मरण रखना कितना सरल होगा। (हमें एक अंश

स्मरण रखना होगा कि आर्यभट्ट के समय छापाखाना नहीं था। इसलिए एक पुस्तक की एक प्रति तैयार करना बहुत ही कष्टदायक था। बहुत सारी बातें लोगों को स्मरण रखकर ही बचा लेनी पड़ती थीं।)

व्यस्तविधि :

गुणकारा भागाहरा भागाहरा ये
भवन्ति गुणकाराः।
यः क्षेपः सोपचयोपचयः
क्षेपश्च विपरीते ॥

विपरीत क्रम से (व्यस्त विधान में) गुणाकार, भागाकार होता है, भागाकार गुणाकार बनता है। ऐसे ही संकलन व्यवकलन बनता है, तो व्यवकलन संकलन बन जाता है।

इस प्रकार के गणित को अन्त से पीछे की ओर आदि तक करना पड़ता है। उदाहरण के लिए देखें—

किसी संख्या को 3 से गुणा करके 5 से भाग देकर, 3 जोड़कर, 1 घटा देने पर 5 आता है। गणित अंत से प्रारंभ करने पर—

$$5 + 1 = 6, 6 - 3 = 3, 3 \times 5 = 15 \\ 15 \div 3 = 5 \quad \text{अतः उत्तर 5 है।}$$

‘आर्यभट्टीयम्’ के भाष्यकारों में एक शास्त्रज्ञ परमेश्वर ने इस सूत्र का विवरण देते हुए यह गणित किया है।

कस्त्रिघ्नः पंचभिर्भक्तः षड्भिर्युक्तः पदीकृतः।
एकोनो वर्गीतो वेद संख्याः स गणकउच्यताम् ॥

किसी संख्या को 3 से गुणा करके, 5 से भाग करके, 6 जोड़कर

वर्गमूल करके, एक घटाकर वर्ग करने पर 4 होता है। इसे गणक कहते हैं।

$$\sqrt{4} = 2, 2 + 1 = 3, 3^2 = 9, 9 - 6 = 3$$

$$3 \times 5 = 15, 15 \div 3 = 5 \quad \text{अतः उत्तर} = 5$$

(व्यस्तविधि में वर्ग वर्गमूल होता है और वर्गमूल वर्ग होता है।)

मूलफलम् सफलम् कालमूलगुणधर्म-मूलकृतियुक्तम्।

मूलम् मूलार्धोनम् कालहतम् स्यात्स्व-मूलफलम् ॥

यहाँ 'मूल' से तात्पर्य है—उधार दिया हुआ धन (ऋण अथवा मूलधन) और 'फल' का अर्थ है - ब्याज।

मूल के ब्याज को उस ब्याज पर मिलने वाले ब्याज को मिलाकर उसे काल से और मूल से गुणा कर के उपलब्ध मूल के वर्ग के आधे को मिलाकर, तत्पश्चात् उसके वर्गमूल का पता लगाइये। पुनः मूल के अर्ध को घटाकर शेष को काल से भाग दें। तब मूल-(धन) का ब्याज ज्ञात होता है। मान लिया जाय—एक मूल पर (मू.) आने वाला ब्याज जितना हो, उसे आगे बढ़ाने पर एक निश्चित काल में (व) ब्याज पर भी ब्याज आयेगा। पहले आये ब्याज के साथ मिला हुआ उसका ब्याज (ब्या) ज्ञात होता है। यह सूत्र मूल ब्याज को बताता है।

$$\text{मूल का ब्याज (क्ष)} = \frac{(\sqrt{\text{ब्या} \times \text{मू} \times \text{व} + (1/2)^2}) - 1/2 \text{ मू}}{\text{व}}$$

इस सूत्र के विवरण हेतु व्याख्यानकार परमेश्वर यह गणित बताता है—
एक व्यक्ति 100 रुपये एक मास के लिए ऋण देता है। तब प्राप्त ब्याज का

आगे 6 मास तक फिर ऋण देता है। उस समय प्रारंभिक ब्याज के साथ पर भी ब्याज जोड़कर 16 रुपये होते हैं। प्रथम ब्याज का पता लगाना होगा।

यहाँ $मू = 100$, $ब्या = 16$ व $व = 6$, प्रथम ब्याज (क्ष)

सूत्रानुसार—

$$\begin{aligned} \text{क्ष} &= \frac{(\sqrt{16 \times 100 \times 6 + (50)^2}) - 50}{6} \\ &= \frac{(\sqrt{9600 + 2500}) - 50}{6} \\ &= \frac{1}{6}(\sqrt{12100} - 50) \\ &= \frac{1}{6}(110 - 50) \\ &= \frac{1}{6}(60) \\ &= 10 \end{aligned}$$

इसलिए 100 रुपये का एक महीने का ब्याज 10 रुपये हुआ।

ऐसे अमूल्य ज्ञान से युक्त 'आर्यभट्टीयम्' गौरव का पात्र बना, सभी विद्या केन्द्रों में इसका अध्ययन होता था। अन्य भाष्यकारों में सोमेश्वर, सूर्यदेव (1191), परमेश्वर (1380), मल्लय्या (1480), नीलकण्ठ (1500), रघुनाथराज (1597), विरुपाक्ष घटिगेप (1800), कोदंडराम (1807), कृष्णदास (1756) आदि मुख्य हैं।

वराहमिहिराचार्य (587), ब्रह्मगुप्त (628) इत्यादि के लेखों से पता चलता है कि खगोलशास्त्र से संबंधित आर्यभट्ट की और भी एक कृति थी— 'आर्यभट्ट सिद्धान्त'। यद्यपि आज आर्यभट्ट सिद्धान्त उपलब्ध नहीं है, तथापि एक समय था जब पूरे भारत में उस कृति का अध्ययन होता था।

सातवीं सदी में उसका प्रचलन अधिक था। ब्रह्मगुप्त के 'खण्डखाद्यक' में उसका संग्रह रूप मिलता है।

अनुष्टुप छंदों में रचित खगोल शास्त्र में प्रयुक्त परिकरों का विवरण देने वाले 'आर्यभट्ट सिद्धान्त' के मात्र 34 श्लोक मिले हैं।

आर्यभट्ट की अन्य कोई कृति नहीं मिली है।

आर्यभट्ट कितने वर्षों तक जीवित रहे, इसकी जानकारी उपलब्ध न होते हुए भी शिकागो नगर से प्रकाशित संसार के वैज्ञानिकों के बारे में जानकारी देने वाली कृति में अंकित किया गया है कि आर्यभट्ट सन् 550 ई० तक जीवित रहे। लेकिन इसके लिए उन्होंने कोई आधार नहीं दिया है।

विशेष स्थान

भारतीय वैज्ञानिकों में आर्यभट्ट का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। खगोल-गणित शास्त्रों में अपार ज्ञान प्राप्त, इसकी कृति भारत में सर्वत्र मान्य नहीं हो पायी, अपितु पंचांग के निर्माण में कश्मीर से कन्याकुमारी तक व्यापक रूप में यह काम में लायी जाती थी। बीज गणित, त्रिकोणमिति और खगोलविज्ञान का आर्यभट्ट की देन के रूप में विशेष महत्व है। इतना ही नहीं, उन शास्त्रों की व्यापक अभिवृद्धि के लिए यह कृति नींव की भाँति है। सैद्धांतिक रीति से प्रारंभ करके खगोल में नूतन परिकारों का उपयोग करने वाला यही है। आर्यभट्टीयम् इस कृति से आर्यभट्ट दिगन्त कीर्तिवान, महाविज्ञानी सिद्ध हुआ है और वही भावी वैज्ञानिकों का चमकते ध्रुव तारे के समान पथ प्रदर्शन बना है।

19 अप्रैल, 1975 को भारत में निर्मित प्रथम कृत्रिम उपग्रह 'आर्यभट्ट' इसी आद्य गणिताचार्य एवं खगोलशास्त्री की स्मृति में अंतरिक्ष में स्थापित किया गया।

